शूरसैनी रासो

(धर्मपालसुत कृत)

पंजाब, हिमाचल , जम्मू ,और पश्चिमोत्तर हरयाणा के सैनी भाईचारे का संक्षिप्त इतिहास

अक्टूबर, 2022

(Pre-Print 'Beta' Edition)

धर्मपालसुत

Copyright Notice: This pre-print edition of Shoorsaini Raso (Dharampalsut Krit) book is being released for exclusive use by members of Saini community of Punjab, Himachal Pradesh, Jammu and North Western Haryana. Commercial use of this book, or any part thereof, without written permission, is strictly prohibited and violators will be prosecuted to the maximum extent of the law.

शूरसैनी रासो

(धर्मपालसुत कृत)

अथ मंगलाचरणम

जय महाराजा शूरसेन!

जय शूरसैनी बलदेव जी महाराज!

जय शूरसैनी कृष्ण जी महाराज!

जय अमर बलिदानी दाता शेर सिंह सैनी सलारिआ!

जय सती माई बुआ दाती!

जय सती माई बीबी गुरदित्ती!

जय अमर बलिदानी माता बीबी शरण कौर पाब्ला!

जय अत्रि कुल!

जय वृष्णि संघ!

जय यदु वंश!

मंगलाचरणम समाप्तम ।

पकड़ तुरक गन कउ करें वै निरोधा!

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै!

जगै धर्म हिन्दुक , तुर्क दुंद भाजै!

उग्रदंति ।

श्री भगौती जी सहाय!

श्री मुखवाक पातशाही दसवीं!

© धर्मपालसुत
All rights reserved

अब सैनियों का इतिहास संक्षिप्त में

"हमने पोरस नामक राजा उत्पन्न करने का श्रेय पंजाब के यादवों को दिया है। (प्रयाग से) पुरु चन्द्रवंशिओं की इस शाखा का उपनाम बन गया । इसे सिकंदर के इतिहासकारों ने पोरस कहा। शूरसेन के वंशज , मथुरा के शूरसैनी, सभी पुरु ही थे यानी मेगेस्थेनेस के "प्रासिओई" ।"

(एनल्स एंड एंटीक्विटिस ऑफ़ राजपुताना , कर्नल जेम्स टॉड, पृष्ठ 36 (कथित-कथन), 1873)

"सैनी अपने उद्गम का अनुरेखण उस राजपूत शाखा से करते हैं जो सबसे पहले हुए मुस्लमान आक्रमणों से हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए यमुना के तट पर दिल्ली के दक्षिण में मथुरा के निकट अपने ठिकाने से आये।"

(दी लैंड ऑफ़ फाइव रिवर्स ; पंजाब का एक आर्थिक इतिहास --- पृष्ठ 100 , हुग कैनेडी ट्रेवस्किस , ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1928)

" शौरसैनी शाखावाले मथुरा व उसके आस पास के प्रदेशों में राज्य करते रहे। करौली के यदुवंशी राजा शौरसैनी कहे जाते हैं। समय के फेर से मथुरा छूटी और सं. 1052 में बयाने के पास बनी पहाड़ी पर जा बसे। राजा विजयपाल के पुत्र तहनपाल (त्रिभुवनपाल) ने तहनगढ़ का किला बनवाया। तहनपाल के पुत्र (द्वितीय) और हरिपाल थे जिनका समय सं 1227 का है। "

- नयनसी री ख्यात , दूगड़ (भाषांतकार), पृष्ठ 302

अर्जुन द्वारा यदुवंशियों को पंजाब में बसाने का प्रसंग विष्णु पुराण में आता है । श्री कृष्ण के पड़पौत्र वज्रनाभ को शक्रप्रस्थ अर्थात् इंद्रप्रस्थ (या वर्तमान दिल्ली) का राजा बनाने का प्रसंग महाभारत के मौसल पर्व में आता है। इनके वंशजों ने अफगानिस्तान तक का इलाका जीत लिया था । अल-मसुदी, अदबुल-मुलुक और फरिश्ता जैसे अरबी और तुर्क इतिहासकारों ने भी अफगानिस्तान और पंजाब के काबुलशाही (हिंदू शाही) राजाओं को यदुवंशी या शूरसैनी बताया है। कश्मीर के इतिहास राजतरंगनी के रचयिता कल्हण का भी यही मत है कि काबुल शाही राजा क्षत्रिय थे । गज़नी शहर सैनी-यदुवंशी अर्थात शूरसैनी राजा गज महाराज ने बसाया था । इतिहासकार राजा पोरस को भी शूरसैनी यादव (अर्थात सैनी) मानते हैं ।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

पंजाब का प्राचीन वृष्णि संघ

नुमिस्मैटिक्स (यानि "मुद्राशास्त्र") के शोध द्वारा अब यह पूर्णतः और निर्विवादित रूप से सिद्ध हो चुका है कि प्राचीन शूरसैनी यदुवंशिओं से सम्बंधित वृष्णि संघ पंजाब में था और यह उन क्षेत्रों में था जिनमें आज भी सैनियों का बाहुल्य है। यह प्राचीन वृष्णि संघ के क्षेत्र पंजाब के होशीआरपुर , पठानकोट , गुरदासपुर, और जम्मू , हिमाचल और पश्चिमोत्तर हरयाणा में इनके, सीमावर्ती जिले है । सं 1947 से पहले के भारतीय पंजाब में ही आने वाला, शूरसैनी राजा शालिवाहन से सम्बंधित, स्यालकोट जिला भी इसी वृष्णि संघ में था और रावलपिण्डी इसकी पश्चिमोत्तर सीमा पर था । भारत के बटवारे से पहले इन क्षेत्रों में भी सैनी अच्छी मात्रा में थे। पूरे भारत में अपने आप को यदुवंशी कहाने वाले किसी भी जातीय समूह का कृष्णवंशी होने का आग्रह जब तक पूर्णतः संदिग्ध है जब तक वह पंजाब के सैनी बाहुल्य वाले वृष्णि संघ से अपनी वंशावली का निकास सिद्ध नहीं कर सकता ।

मेगेस्थेनेस जब भारत आया तो उसने मथुरा के राज्य का स्वामित्व शूरसैनियों के पास बताया। उसने सैनियों के पूर्वजों को यूनानी भाषा में "सोरसिनोई " के नाम से सम्भोदित किया । यह उसका लिखा हुआ ग्रन्थ "इंडिका" प्रमाणित करता है जो आज भी उपलभ्ध है।

बाद में मथुरा पर मौर्यों का राज हो गया । उसके पश्चात कुषाणों और शूद्र राजाओं ने भी यहाँ पर राज किया। कहा जाता है की लगभग आठवीं शताब्दी के आस पास पंजाब से (जहां भट्टी शूरसैनियों का वर्चस्व था) कुछ यदुवंशी मथुरा वापिस आ गए और उन्हों ने यह इलाका पुनः जीत लिया। इन राजाओं की वंशावली राजा धर्मपाल से शुरू होती है जो कि श्री कृष्ण के वंशज बताये जाते हैं । यह यदुवंशी राजा सैनी (या शूरसैनी) कहलाते थे । यह कमान (कादम्ब वन) का चौंसठ खम्बा शिलालेख इंगित करता है और इसको कोई भी प्रमाणित इतिहासकार चुनौती नहीं दे सकता । वर्तमान काल में करौली का राजघराना इन्ही सैनी राजाओं का वंशज है ।

10वीं और 11वीं शताब्दियों में भारत पर गज़नी के मुसलमानो के आक्रमण शुरू हो गए और लाहौर की काबुल शाही राजा ने भारत के अन्य राजपूतों से सहायता मांगी । इसी दौरान मथुरा , भटनेर, लौद्रवा (जैसलमेर), और दिल्ली के शूरसैनी राजाओं ने राजपूत लश्कर पंजाब में किलेबन्दी और काबुलशाहियों की सहायता के लिए भेजे । इन्होने पंजाब में बहुत बड़ा इलाका तुर्क मुसलमानो से दुबारा जीत लिया और जालंधर में राज्य बनाया जिसकी राजधानी धमेड़ी (वर्तमान नूरपुर) थी। धमेड़ी के नाम का कृष्णवंशी राजा धर्मपाल के नाम से सम्बन्ध पूर्ण रूप से इंगित है और सैनी और पठानिआ राजपूतों की धमड़ैत खाप का सम्बन्ध इन दोनों से है । धमेड़ी का किला अभी भी मौजूद है और यहाँ पर तोमर-जादों-भट्टी

© धर्मपालसुत
All rights reserved

राजपूतों का तुर्क मुसलमानो के साथ घमासान युद्ध हुआ । तोमर-जादों राजपूतों और गज़नी के मुसलमानो का युद्ध क्षेत्र लाहौर और जालंधर (जिसमे वर्तमान हिमाचल भी आता है) से मथुरा और लौद्रवा (जैसलमेर) तक फैला हुआ था । यह युद्ध लगभग 200 साल तक चले और इस काल में दोनों पक्षों की जय पराजय अनेकानेक बार हुई ।

इस काल में मथुरा , बयाना, थानगिरि, भटनेर, पूगल, लौद्रवा (जैसलमेर), और दिल्ली से तोमर-जादों-भट्टी राजपूतों का पलायन युद्ध के लिए या युद्ध के प्रवभाव से पंजाब की ओर होता रहा ।तोमर, भट्टी , और जादों राजपूतों की खापें एक दूसरे में घी और खिचड़ी की तरह समाहित हैं और बहुत से इतिहासकार इनको एक ही मूल का मानते हैं (उदाहरण: टॉड और कन्निंघम) । इन राज वंशों के पूर्व मधयकालीन संस्थापक दिल्ली के राजा अनंगपाल और मथुरा के राजा धर्मपाल थे । **पंजाब, जम्मू , और उत्तरी पश्चमी हरयाणा के नीम पहाड़ी क्षेत्रों के सैनी इन्ही तोमर, जादों, भट्टी और पंजाब में पहले से रहते हुए शालिवाहनोत , बालबंधोत, काबुलशाही और, महाभारत में वर्णित मौसल युद्ध के उपरान्त पंजाब में बसने वाले, प्राचीन वृष्णि संघ के अन्य यदुवंशी राजपूतों के वंशज हैं जो सामूहिक रूप से शूरसैनी या सैनी कहलाते थे।** पहाड़ों पर बसने वाले डोगरा राजपूतों में भी इनकी कई खापें मिली हुई हैं । स्मरण रहे कि भट्टी शूरसैनियों और उनके पूर्वजों का बाहुल्य और बाहुबल का ठिकाना चिरकाल से पंजाब में ही था। इस लिए पंजाब में शूरसैनी यदुवंशी इस सैनिक पलायन से पहले भी बड़ी संख्या में थे और मथुरा, करौली और बयाना वाली शूरसैनी शाखा भी आठवीं शताब्दी में पंजाब से ही वहां गयी थी। । जैसलमेर के भट्टी भी पंजाब से निकली हुई मात्र एक शाखा हैं।

जैसे कि पहले भी इंगित किया गया है पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान पर शासन करने वाले और मेहमूद ग़ज़नी की तुर्क मुस्लमान सेनाओं से भिड़ने वाले काबुल शाही राजा भी भट्टी शूरसैनी ही थे। इनसे शुरू हुई शाखाएं आज भी पंजाब और जम्मू के सैनियों में मिलती हैं।

जब क्रूर मुस्लमान आक्रांता मोहम्मद शहाबुद्दीन घौरी अफ़ग़ानिस्तान लौट रहा था तो उस मलेच्छ को मौत के घाट उतारने और उसे नर्क की आग में झोंकने वाले भी शूरसैनियों की खोखर शाखा के योद्धा ही थे। खोखर आज भी पंजाब और जम्मू के सैनी यदुवंशी क्षत्रियों की बहुत सी शाखाओं का उपगोत्र है। यह उपगोत्र अब पंजाब और पाकिस्तान कि अन्य जातियों में भी पाया जाता है लेकिन उन सब में भी इस उपगोत्र का आगमन यदुवंशी सैनियों से ही हुआ है। इस लिए हिन्दू हिरदय सम्राट पृथिवी राज चौहान जी के वध के प्रतिशोध का गौरव भी पंजाब के सैनी यादवों या शूरसैनियों को ही प्राप्त है।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

शालिवाहन पंजाब के एक महाप्रतापी शूरसैनी राजा थे और भट्टी शाखा इन्ही के वंशजों से उत्पन्न हुई है। राजा शालिवाहन को शकों को पराजित कर अफ़ग़ानिस्तान तक का इलाका जीतने के लिए "शाकारि" कहा जाता हैं । भारत के शक सम्वत का उद्घोष प्राचीन पंजाब के वृष्णि संघ की शूरसैनी सेना के द्वारा शकों पर विजय प्राप्त करने के दिवस से ही हुआ। इस लिए भारतीय संस्कति को शूरसैनियों की देन ,मात्र युद्ध कौशल तक सीमित नहीं थी। आधुनिक पंजाबी भाषा भी शूरसैनी भाषा का ही एक अपभ्रंश या वंशधर है। इस प्रकार से शूरसैनियों की छाप उत्तरी और पश्चिमी भारत की संस्कृति के हर आयाम पर है।

खालसा पंथ कि उत्पति से पहले खैबर दर्रे के रखवाले और 'हिन्द की चादर' शूरसैनी अर्थात सैनी क्षत्रिय राजपूत ही थे। पंजाब , कश्मीर और पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान में खालसा राज और हिन्दुपदपादशाही स्थापित करने वाले महाराजा रंजीत सिंह की वंशावली भी इन्ही शूरसैनियों में से निकलती है।

श्री कृष्ण सैनी थे : एक ऐतिहासिक तथ्य

इस ऐतिहासिक तथ्य का भी विस्मरण न हो कि महाभारत में श्री कृष्ण और उनके कुटुम्भ के यादवों को, श्री कृष्ण के दादा महाराजा शूरसेन के नाम के पीछे , "शूरसैनी" कह कर बार बार सम्बोधित किया गया है। श्री वेद व्यास जी महाभारत में एक स्थान पर लिखते हैं :

"शूरसैनियों में सर्वश्रेष्ठ , शक्तिशाली, द्वारका में निवास करने वाले (श्री कृष्ण महाराज) सभी भू पतियों का दमन करेंगे और वह राजनीती शास्त्र में पूर्णतः निपुण होंगे ।"

(महाभारत , अनुशासन पर्व , 13 , 147)

विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम् के 75वें श्लोक में श्री कृष्ण को शूरसैनी इस प्रकार कहा गया है :

सद्गतिः , सत्कृतिः , सत्ता , सद्भूतिः , सत्यपरायणः ।

शूरसेनो यदु श्रेष्ठः , सन्निवासः, सुयामुनः।।

"जो सद्गति के रूप हैं , जो उत्तम क्रिया वाले हैं , जिनका अस्तित्व और सामर्थ्य स्वयं सिद्ध है , जो सत्य के प्रति पूर्ण निष्ठा वाले हैं।

जो शूरसैनी यादवों में श्रेष्ठ हैं (अर्थात श्री शूरसेन के कुल के शूरसैनी श्री कृष्ण) , जिनका निवास सत्पुरुषों का आश्रय है , और जो पवित्र यमुना के तट पर विद्यमान हैं।।"

© धर्मपालसुत
All rights reserved

कुछ अल्पज्ञ टीकाकार , जिन्हे शास्त्र और संस्कृत व्याकरण का पूरा ज्ञान नहीं है , यहाँ पर संज्ञात्मक "शूरसेन" शब्द को विशेषण भाव वाले "शूरवीर" रूप में अनुवादित करते हैं जो कि पूर्णतः त्रुटिपूर्ण है। "शूरसेनः" का अभिप्राय इस श्लोक में श्री कृष्ण के पारिवारिक नाम, जो प्राकृत भाषा में "शूरसैनी" है, उसी से ही है क्योंकि यह शब्द महाभारत और पुराणों में केवल श्री कृष्ण के पितामह महाराजा शूरसेन और उनके कुटुम्भ के यादवों के लिए ही प्रयोग होता है। "शूरसेनो यदु श्रेष्ठः" या "शूरसेनो यदु पतिः" का जहाँ भी प्रयोग होता है वह केवल और केवल श्री कृष्ण के लिए या उनके पितामह के लिए ही होता है जैसे कि भागवत की इस पंक्ति में "शूरसेनो यदु पतिः" पितामह महाराजा शूरसेन के लिए प्रयोग किआ गया है ।

"शूरसेनो यदुपति: मधुरामावसन् पुरीम् "

(श्रीमद भागवत पुराण , स्कंध 10 , भाग 1)

बहुवचन में "शूरसेनाः" का प्रयोग पौराणिक साहित्य में सदैव शूरसैनियों की सेना या जनपद के लिए होता है।

विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम् के अनुवाद और व्याख्या उसके वृहत पौराणिक सन्दर्भ से पृथक करके नहीं किये जा सकते । यह शास्त्र व्याख्या के मौलिक नियम के विरुद्ध है।

इसलिए यह कहना भी अतिशोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि अगर श्री कृष्ण पृथ्वी पर फिर से आकर अपनी पहचान आधुनिक सन्दर्भ में दें तो उस पहचान में "सैनी" शब्द अनिवार्य रूप से सम्मिलित होगा।

कोई भी जातीय समुदाय अगर सैनियों में से अपनी वंशावली का अनुरेखण किये बिना कृष्ण वंशी होने का दावा करे तो वह दावा एक परिहास के अधिक कुछ नहीं है। ऐसे दावे तो संभव हैं पर इन दावों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध होना असंभव है।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

1. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 1**। प्रयाग यदुवंशिओं का प्राचीनतम उद्गम स्थल है। शूरसैनी यादवों के प्राचीन इतिहास में प्रयाग, मथुरा और द्वारका सबसे पवित्र देवभूमि माने जाते हैं जिन्हे यदुवंश की सभी शाखाओं के लोग अत्यंत भक्तिभाव से देखते हैं। टॉड ने प्रयाग को पुरु और पोरस का निरुक्त माना है लेकिन टॉड ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजा पोरस को शूरसैनी कहना केवल नाम की समानता पर आधारित नहीं है। इसका कारण है कि विष्णु पुराण के अनुसार पंजाब द्वारका के बाद शूरसैनी यादवों का

© धर्मपालसुत
All rights reserved

मुख्य ठिकाना बन गया था। रुचिकर बात यह भी है कि राजा पोरस के लगभग समकालीन वृष्णि संघ के सिक्के भी पंजाब के होशीआरपुर में पाए गए जो कि आज भी सैनियों का गढ़ है। यह वृष्णि सिक्के पंजाब के बाहर आजतक कहीं और से नहीं मिले हैं। यह कन्निंघम के "औदुम्बरा संग्रह" का भाग हैं और कुलुता श्रेणी में आते हैं। खरोष्टी और ब्रहमी दोनों भाषाओँ के उपयोग वाले इस श्रेणी के सिक्के पंजाब और हिमाचल की सीमा पर होशीआरपुर, पठानकोट, गुरदासपुर, ऊना और काँगड़ा ज़िलों की परिधि से बाहर के हो ही नहीं सकते। इन सिक्कों से भी इंगित होता है कि विष्णु पुराण का शूरसैनी शाखा वाले यादवों को अर्जुन द्वारा पंजाब में बसाने का वर्णन पूर्णतः सटीक है। वृष्णि यादवों की वो शाखा है जिस से श्री कृष्ण और उनके पितामह महाराजा शूरसेन थे। इस प्रकार शूरसैनी वृष्णि यादवों की आगे एक और शाखा थे।

2. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 2**। सभी शूरसैनी यादव होते हैं पर सभी यादव शूरसैनी नहीं क्योंकि प्राचीन यादवों में 56 शाखाएं थीं। शूरसैनी केवल वह यादव शाखा है जिसके मूल पुरुष श्री कृष्ण के पितामह महाराजा शूरसेन थे। यह यादवों की सबसे वर्चस्वी शाखा थी जिसमे श्री कृष्ण का जन्म हुआ था । पंजाब और शौरसेन प्रदेश (पूर्वी राजपुताना और नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेस) में 20वे सदी के पूर्वार्ध में "सैनी" शब्द "शूरसैनी" के संक्षिप्तीकरण के रूप में ही प्रयोग होता आया है। करौली रियासत के जादों राजपूतों को, शूरसैनी शब्द को विभक्त करके , कभी "शूर" तो कभी "सैनी" करके भी इतिहासकारों द्वारा वर्णित किआ जाता रहा। उदाहरण के लिए राणा हमीर देव चौहान के मंत्री राणा मल्ल को प्रसिद्ध इतिहासकार दशरथ शर्मा "शूर राजपूत" बताते हैं और उन्हे बयाने की शूरसैनी वंशावली से जोड़ते हैं। दूसरी ओर खल्जीओं के कवि-विद्वान, अमीर खुसरो, उसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए सबसे खूंखार राजपूत सेना पति को "गुरदान सैनी" बताते हैं। खुसरो के अनुसार सैनी की वीरगति लड़ाई का निर्णायक मोड़ थी। उनके वीरगति को प्राप्त होते ही राजपूत सेना मनोबल खो बैठी और उथल-पुथल हो गयी। राणा मल्ल ओर गुरदान सैनी संभवतः दोनों एक ही कुल के थे ओर शूरसैनी थे। इससे भी यह ज्ञात होता है कि शूरसैनी यादव राजपूतों का सामान्य भाषा में केवल "शूर" या फिर केवल "सैनी" कहलाये जाने का प्रचलन भी था। । मथुरा, बयाना. ओर कमान आदि के कृष्ण वंशी शूरसैनी राजवंश के पूर्वजों को भी सामान्य बोलचाल की भाषा में "सैनी" ही कहा जाता था (देखें "इनसाइक्लोपीडिया इंडिका" , भाग 100 , पृष्ठ 119-120 , 1996)।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

3. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 3**। विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम् में आने वाले “शूरसेनो यदु श्रेष्ठः” में श्री कृष्ण के लिए प्रयोग हुआ “शूरसेनः” शब्द उनके वंश का ज्ञान कराता है । सभी जानते हैं कि शूरसेन श्री कृष्ण का नहीं अपितु उनके दादाजी का नाम था। इस लिए "शूरसेनो यदु श्रेष्ठः" में “शूरसेनः” केवल जाति सूचक है, व्यक्ति सूचक नहीं । सन्दर्भ के अनुसार संस्कृत भाषा में "शूरसेनः" शब्द व्यक्ति सूचक और जाति सूचक दोनों ही हो सकता है। प्राकृत वंशज भाषाओँ (उदाहरणतः हिंदी या पंजाबी) में व्यक्ति सूचक "शूरसेनः" का अनुवाद "शूरसेन" ही होगा परन्तु जाति सूचक "शूरसेनः" का अनुवाद केवल "शूरसैनी" ही हो सकता है। ठीक इसी प्रकार शूरसेन राज्य की भाषा का प्राकृत अपभ्रंश "शूरसैनी" कहाता है जो हिंदी और पंजाबी दोनों का पूर्वज है।

कुछ अपने घर की यूनिवर्स्टियों से स्नातकोत्तर छदम इतिहासकार, और जातीय दर्प से विषाक्त हुए धूर्त, ईर्ष्या वश पंजाब के यदुवंशी सैनियों को प्राचीन शूरसैनियों से अलग बताने के लिए हिंदी जैसी देशी भाषा के वाक्यों में "शूरसैनी" के बजाय अप्राकृतिक रूप से संस्कृत का "शूरसेनः" या "शूरसेनो" का प्रयोग करते हैं । यह शठ पूरा वाक्य तो हिंदी या अंग्रेजी में लिखते हैं लेकिन उसमे कुटिलता या अज्ञानवश प्राकृत "शूरसैनी" के बजाय संस्कृत का "शूरसेनो" ठूस देते हैं। यह व्याकरण के नियमो का उलंघन है और बौद्धिक व्यभिचार की परिकाष्ठा है।

इन दुर्मतियों की ज्ञान वृद्धि के लिए हम राजपुताना के प्रतिष्ठित इतिहासकारों के सन्दर्भ उद्धृत करते हैं जिन्होंने हिंदी भाषा में "शूरसेनो" का अनुवाद व्याकरण के नियमानुसार "शूरसैनी" ही किया है।

"ये शूरसैनी कहलाते हैं । श्रीकृष्ण के दादा शूरसेन थे जिससे मथुरा के आस पास का देश शूरसेन कहलाता था और यहाँ के यादव शूरसैनी कहलाये।"

(लेखक: मांगी लाल महेचा, "राजस्थान के राजपूत" , पृष्ठ 31, यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन , 1965)

© धर्मपालसुत
All rights reserved

"करौली का राज वंश अपने को यादव वंशी तथा मथुरा की शूरसैनी शाखा से निकला हुआ मानता था ।"

(लेखक: जगदीश सिंह गहलोत, "इतिहास रत्नाकर" , पृष्ठ 44, श्री जगदीश सिंह गहलोत शोध संस्थान, 1991, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया , 2007)

4. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 4**। यादव कुल से अपना उद्गम बताने वाले बणीया भाईचारे के लोग, जो आज कल अपने को वार्ष्णेय लिखते हैं, अंग्रेजी काल तक अपने को बारह-सैनी और शूरसैनी दोनों कहाते थे (देखें " हिन्दू कास्टस एंड सेक्ट्स", पृष्ठ 204, लेखक जोगेंद्र नाथ भट्टाचार्य , अठारह सौ छयानवे) । पंजाब में तो यह अभी भी ऐसे ही है और सैनियों के स्वजातीय इतिहासकार और प्रवक्ता चौधरी शिव लाल सैनी जी ने भी उर्दू भाषा में लिखे अपने ग्रन्थ, जो 20वीं सदी के आरम्भ में लाहौर से प्रकाशित हुआ था, का नाम "तारीख-ए-कौम शूरसैनी" ही रखा था । इसलिए पंजाब के शुद्ध रक्त यदुवंशी सैनी क्षत्रियों में न "शूरसैनी" पहचान की और न ही मथुरा और यदु पति पितामह महाराजा शूरसेन से उनके उद्गम की स्मृति कभी विलुप्त हुई, और ना ही इन्होने कभी कई और जातीय समुदायों की तरह, आधुनिक समाज शास्त्र में "संस्कृतिकरण" कही जाने वाली प्रक्रिया के अंतर्गत, कभी अपने नाम , पहचान, और उनसे जुड़े हुए वृतांत बदले। इस लिए "सैनी" और "शूरसैनी" उपनामो का ऐक्य , यदुवंश से उत्पति के सन्दर्भ में, अनेक सवतंत्र और असंबंधित स्रोतों से सिद्ध होता है जिन स्रोतों में, जानकारी और प्रचार माध्यमों के आभाव के कारण, योजनाबद्ध समन्वय असंभव था। अकादमिक या शास्त्र-विषयक विवेचन में इस प्रकार तथ्य की पुष्टि को "त्रिअंगुलेशन" बोला जाता है जो की सर्वदा निर्विवादित माना जाता है ।

5. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 5**। बारह-सैनी बणिया भाईचारा. , जो अंग्रेज़ी काल से अपने को “वार्ष्णेय” लिखने लगा, वृष्णि कुल में जन्मे और श्री कृष्ण के सम्बन्धी अक्रूर जी को अपना मूल पुरुष बताता है और अपने को शूरसैनी यदुवंशी मानता है। रुचिकर बात यह भी है कि पंजाब के प्राचीन वृष्णि संघ के वंशज सैनियों की एक उपशाखा भी, जिसका नाम “तण्ड्” है, अपना उपगोत्र "अक्रूर" बताती है।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

6. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 6**। शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी को सं बारह सौ छह में वर्तमान पाकिस्तानी पंजाब के रावलपिंडी और झेलम ज़िलों के लगभग बीच में पड़ने वाले कोट धमीआक नामक स्थान पर खोखरों ने मौत के घाट उतार दिया। धमीआक सैनियों की धमड़ैत या धमड़ील गोत का एक ठिकाना था। धम्याल और धमियाक इस गोत के नाम के ही अलग अलग रूप हैं । यह मूल रूप से शुद्ध यदुवंशी राजपूत हैं, पर अब यह गोत मुस्लमान राजपूतों (यानि रांघड़ों) , जाटों और गूजरों में भी मिलता है। यह गोत पठानिआ हिन्दू भाईचारे में भी ठीक इसी नाम से पाया जाता है। लेकिन यह मूल रूप से शूरसैनियों की ही शाखा है और जो, तुर्क मुस्लमान शासित पंजाब में, हिन्दू सैन्य शक्ति का विध्वंश करने की दृष्टि से, क्षत्रिय जातिओं पर होते हुए विशेष प्रकार के अत्याचारों से उत्पन्न परस्थितियों के कारण, इन्ही में से बहिर्विवाह, व्यवसाय परिवर्तन और धर्मपरिवर्तन द्वारा कालांतर में अन्य समुदायों में गयी। । यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि धमड़ैत, धमड़ील या धम्याल रावलपिंडी और झेलम ज़िलों की मुग़ल जाति का भी एक प्रमुख गोत है (देखें “सेन्सस ऑफ़ इंडिया , 1901, वॉल्यूम 17, पृष्ठ 354”) और इनके विवाह तथा कथित “मुग़ल” गखड़ों और कयानिओं में होते थे। अंग्रेजी काल तक भी यह मुस्लमान धम्याल अपने को सैनी मुग़ल भी कहलाते थे (देखें "रिपोर्ट ऑन थे सेन्सस ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया, टेक्कन ऑन 17 फेब्रुअरी 1881", प्लोव्देन, डबल्यू सी , पृष्ठ 277, 1883) ।

पंजाब और गांधार में क्रूर और निरंकुश तुर्क और पठान इस्लामी शासन अपनी चरम सीमा पर था । पश्चिमोत्तर पंजाब में हिन्दू क्षत्रिय जातियों को जज़िया देने के इलावा बलपूर्वक भूमि अधिग्रहण और "डोला" कुरीति आदि अत्याचारों का भय हमेशा बना रहता था। डोला कुप्रथा के अंतर्गत हिन्दू राजपूतों को अपनी सम्पति और अपना सामाजिक वर्चस्व बचाने के लिए स्थानीय मुस्लमान हाकिमो को अपनी बेटीआं ब्याहनी पड़ती थी। इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए कुछ राजपूत कबीले पूरी तरह मुस्लमान हो गए और जो क्षत्रिय अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए अपनी वैदिक आस्था का विनिमय नहीं करना चाहते थे वह अपनी क्षत्रिय पहचान को गौण करके कृषि, व्यापार आदि अन्य व्यवसाय अपनाने लगे । पंजाबी समाज में यह परिवर्तन निरंतर गति से लगभग 700 साल तक चलता रहा । यह अत्याचार अन्य हिन्दू जातियों पर भी होता था परन्तु ब्राह्मणो और क्षत्रियों पर यह विशेष तीव्रता से, और बिना किसी ढील के , इसे थोपा जाता था। इस्लाम अपना कर इन धर्मच्युत भूतपूर्व राजपूतों का पूरा

© धर्मपालसुत
All rights reserved

काम नहीं बनता था। शाही दरबारों में उन्नति के लिए इन्हे खुद को "अशरफ" भी सिद्ध करना होता था। केवल ऊंची हिन्दू जाति से धर्मान्तरित होना प्रयाप्त नहीं था । इसलिए यह धर्मांतरित भूतपूर्व हिन्दू जातियां अपने को अशरफ बताने के लिए अपनी वंशावलियों को छदम विधि से अरबों , ईरानियों और तुर्कों से जोड़ने का हर संभव प्रयास करते थे और इसके कारण इनमे विभिन्न प्रकार के मनगढंत कथानक प्रचलित हो गए । इन धर्मांतरित तथा कथित मुग़ल सैनियों, गखड़ों, धम्यालों , बड़लों, इत्यादियों का मुग़लीकरण या अशरफीकरण इसी सामाजिक प्रक्रिया से हुआ । सौभाग्य से पूर्वी पंजाब में इन पुरातन क्षत्रिय कुलों की हिन्दू शाखाएं पूरी तरह विलुप्त नहीं हुई जिससे इनके हिन्दू पूर्वजों और उनके इस्लामीकरण का ज्ञान भलीभांति हो जाता है ।

धमड़ैत, धमड़ीाल या धम्याल गोत का उद्गम पठानकोट ज़िले के धमेड़ी (वर्तमान नूरपुर) से है। इनकी मुस्लमान शाखाएं भी किसी काल्पनिक "धामी खान" की वंशज नहीं है। धमेड़ी का शुद्ध नाम धर्मपाला था और यह प्रतापी शूरसैनी राजा धर्मपाल के नाम पर था। कालांतर में इसका नाम दहमाला, डमाल इत्यादि भी कहा जाने लगा। अल बरुनी ने इसे दहमाला ही लिखा है और इसे प्राचीन जालंधर राज्य की राजधानी बताया है। दहमाला धर्मपाला का अपभ्रंश है। यह जालंधर राज्य भी प्राचीन पंजाब में शूरसैनियों के वृष्णि संघ का ही एक और नाम था। यह वर्तमान जालंधर ज़िले से बहुत बड़ा था और इसमे जालंधर, होशीआरपुर, पठानकोट , जम्मू , सयालकोट , गुरदासपुर , राजौरी, काँगड़ा, झेलम और रावलपिंडी तक के क्षेत्र सम्मिलित थे। प्राचीन अभिलेखों और मुद्राशास्त्र (या नुमिस्मैटिक्स) से यह अब सर्वसिद्ध है कि यह चिर काल से यदुवंशियों द्वारा शासित राज्य था।

खोखर भी शूरसैनी यादवों की उपशाखा है जो लाहौर और काबुल के यदुवंशी हिन्दुशाही राजाओं के निकट सम्बन्धी थे। मेहमूद ग़ज़नी से युद्ध करने वाली काबुल शाही सेना में इनका बढ़ चढ़कर योगदान था । वास्तव में गखड़ और खोखर एक ही जाति हैं और "खोखर" "गखड़" का अपभ्रंश है । खोखरों या गखड़ों का बाहुल्य भी उपरोक्त प्राचीन पंजाब के वृष्णि संघ वाले क्षेत्रों में ही था और “खोखर” जादोबंसी सैनियों की अनेक शाखाओं का उपगोत्र है। कलोटिये, खोवे या खूब्बे , मंगर या मंगराल, धमड़ैत, धमड़ीाल या धम्याल गोत के शूरसैनी या सैनी भी खोखर हैं। इस प्रकार धमड़ैत या धम्याल गोत के ठिकाने कोट धमीआक में शहाबुद्दीन गौरी की हत्या धमड़ैत या धम्याल गोत के हिन्दू शूरसैनी खोखरों द्वारा पूर्णतः इंगित है। गौरी के वध का श्रेय किसी अन्य जाति

© धर्मपालसुत
All rights reserved

को देने वाले अप्रमाणित इतिहासकार "वर्तमानवाद" नामक अकादमिक पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं जो पंजाब के समाज शास्त्र के उचित ज्ञान के अभाव में स्थानीय जातीय पहचानो और उनसे संभंधित काल खंडो की खिच्चड़ी बनाकर अपनी सुविधा अनुसार निष्कर्ष निकालते हैं ।

7. **संपादकीय टिपण्णी क्रमांक 7।** शूरसैनियों के पितरों और कुलदेवता की पवित्र भूमि को जठेरा बोला जाता है।"जठेरा" शब्द संस्कृत के "ज्येष्ठ" का पंजाबी रूप है। हर शाखा या गोत का अपना अलग "जठेरा " होता है जहाँ सती माता का पवित्र स्थल भी होता है। यह प्राचीन क्षत्रिय परंपरा के अनुसार है । यह परंपरा सैनियों में अटूट चलती आयी है । पहले के समय पर इन जठेरा देवस्थलों पर क्षत्रिय मर्यादा अनुसार बलि भी दी जाती थी। लेकिन आज कल यहाँ पारिवारिक निष्ठा अनुसार वैदिक यज्ञ या सिख पद्धति से अखंड पाठ ही होता है। बुआ दाती को सैनियों की सती माता के रूप में पूजा जाता है। जम्मू के सिविल सेक्रेटेरिएट परिसर में फरड़ गोत के सैनियों का बुआ दाती सती मंदिर अति प्रसिद्ध है। यहाँ पर पूजा करने के लिए फरड़ गोत के सैनियों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। फरड़ गोत की बुआ दाती का लोक कथानक डुग्गर देश के स्थानीय ब्राह्मणो के द्वारा माँ बुआ दाती की भेंट के रूप में गाया जाता है। पंजाब में , जहाँ सिख संस्कृति का प्रभाव अधिक है , माँ बुआ दाती को अब बीबी गुरदित्ती भी कहा जाता है और इस पवित्र सती के देवस्थान पर आदि ग्रन्थ साहिब जी का अखंड पाठ और लंगर का, सम्बंधित गोत के सैनियों द्वारा, आयोजन भी होता है ।

जय दाते शेर सिंह सलारिये दी !

जय , शौरी , शूरसैनी, संकर्षण , नीलाम्बर, हलधर, हलयुद्ध, बलदेव, बलभद्र, श्री बलराम जी!

जय अच्युत, शौरी , शूरसैनी, सनातनसारथी , पार्थसारथी, पीताम्बर, पांडुरंगा, श्री कृष्ण मुरारी जी!

वाहेगुरु जी का खालसा , वाहेगुरु जी की फ़तेह!

इति धर्मपालसुत: कृत: शूरसैनी रासो समाप्तम ।

लेखकः धर्मपालसुतः सुप्रसिद्धे अमेरिकनविश्वविद्यालयात् डॉक्टरेट्-उपाधिं प्राप्तवान् अस्ति ।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

आवश्यक सूचना

पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दक्षिण हरयाणा ,और उत्तराखंड में बसने वाली गोला, भागीरथी, कोइरी , काछी, माली , इत्यादि जातीय समीकरण के भाई जो अंग्रेजी काल से अनेक कारणों से "सैनी" उपनाम का प्रयोग करने लगे वह पंजाब , जम्मू, हिमाचल और पश्चिमोत्तर हरयाणा के जादो बंसी सैनी क्षत्रिय भाईचारे, अर्थात शूरसैनियों, से बिलकुल अलग हैं। जादो बंसी सैनी क्षत्रिय भाईचारे के इन जाति समूहों के साथ ऐसे कोई भी सांस्कृतिक, भगौलिक , और वंशानुगत सम्बन्ध नहीं है जो अन्य हिन्दू जातियों के साथ साँझा न हो, और न ही इनमे आपस में विवाह होते हैं । यह जातियां आदर और सम्मान की पात्र हैं परन्तु पंजाब के सैनी या शूरसैनी भाईचारे से पूर्णतः भिन्न हैं। अधिक जानकारी के लिए देखें परिशिष्ट। धन्यवाद।

All rights reserved

© धर्मपालसुत
All rights reserved

परिशिष्ट

छदम संगठनों से सावधान !

कृत्रिम सैनियों और उनके दुष्प्रचार से सावधान!

।निम्न लिखित जातियां पंजाब के शूरसैनी अर्थात यदुवंशी क्षत्रिय सैनी भाईचारे से पूर्ण रूप से अलग हैं:

राजसथान , मध्य प्रदेश और दक्षिण हरयाणा की माली जाति ।

इस जाति के कुछ शठ तत्वों ने 1937 में प्रशासनिक छलबल से अपनी जाति का नाम सैनी लिखवा लिया जबकि इनका पंजाब के यदुवंशी सैनी क्षत्रिय भाईचारे के साथ कोई भौगौलिक , सांस्कृतिक और वंशानुगत सम्बन्ध नहीं है। ऐसा अंग्रेजी काल में ब्रिटिश इंडिया की सेना के लिए योग्यता सिद्ध करने के लिए और "माली" शब्द से और उससे उत्पन होने वाली हीन भावना से अपनी पहचान को अलग करने के लिए किआ गया था। स्मरण रहे कि अंग्रेजी काल में पंजाब के सैनी भाईचारे को स्टटूटोरी मार्शल कास्ट या वैधानिक योद्धा जातियों की सूची में रखा गया था और पंजाब के जादोबंसी सैनी भाईचारे की भर्ती सेना में सीधे तौर पर होती थी। इसलिए सैनी पहचान चुराने के स्पष्ट रूप से सामाजिक प्रतिष्ठा के इलावा आर्थिक और व्यावसायिक लाभ भी थे । अट्ठारहां सौ इक्क्यानवे की मारवाड़ राज्य की जनसँख्या गणना रिपोर्ट में सैनी नाम की कोई जाति नहीं थी। जिससे इस गोत्र चौर्य की पोल अपने आप खुल जाति है।

1937 का जोधपुर स्टेट का आर्डर जिसके द्वारा सैनी क्षत्रिय पहचान में घुसपैठ का कुत्सित प्रयास किया गया आसानी से उपलब्ध है (देखें आर्डर क्रमांक 2240 , फरवरी 6 , 1937, मेहकमास, डी, एम् फील्ड , लेफ्टिनेंट कर्नल , चीफ मिनिस्टर , गवर्नमेंट ऑफ़ जोधपुर, गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, जोधपुर) । 1937 में जोधपुर स्टेट के आर्डर द्वारा पहले मालियों का नाम "सैनिक क्षत्रिय" घोषित करवाया (यह ध्यान देने योग्य तथ्य है की भारत के इतिहास में इस से पहले कोई तथाकथित "क्षत्रिय" कुल ऐसा नहीं हुआ जो अपने गोत्र या शाखा का नाम "सैनिक" बताता हो)। यह एक अनूठी परंपरा की शुरुआत थी । दुर्व्यपदेशन की धृष्टता केवल

© धर्मपालसुत
All rights reserved

इसी बात से सिद्ध हो जाती है की 1941 की जनगणना में इन धूर्त प्रचालकों ने माली जाति के नए संस्कृतकृत नाम "सैनिक क्षत्रिय" में एक बार फिर से फेर बदल करके उस में चालाकी से अक्षर "क" हटा कर उसे "सैनी क्षत्रिय" करवा दिआ जो की एक बिलकुल अलग जाति का नाम था जिसने कभी भी मालिओं को अपने में से एक नहीं माना और न ही कभी उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध बनाये। माली भाईचारे द्वारा अपने को 1941 में सर्वप्रथम बार किसी जनगणना में "सैनी" पंजीकृत करवाने के प्रमाण के लिए देखें “सेन्सस ऑफ़ इंडिया , 1961, वॉल्यूम 14, इशू 5, पृष्ठ 7, ऑफिस ऑफ़ दी रजिस्ट्रार जनरल , इंडिया”। इस तरह की घुसपैठ के प्रयास अंग्रेजी काल में अनेक क्षत्रिय जातियों के साथ हुए। केवल सैनी ही इस कुप्रयास के एक मात्र पीड़ित पक्ष नहीं रहे।

पंजाब के अधिकतर शुद्ध रक्त यदुवंशी सैनियों को इस बात की भनक भी नहीं है कि उनकी चिर प्राचीन पहचान के साथ ऐसी धोखाधड़ी पिछले 70-80 साल से चलती आ रही है। ऐसा इस लिए है क्यों कि ये दोनों जातियां एक ही भौगोलिक क्षेत्र में नहीं हैं और न ही उनकी भाषा एक है । और पंजाबी लोग वैसे भी जाति विषयक संवादों में अधिक रूचि नहीं रखते । इस लिए इस धोखा धड़ी का भांडा फोड़ने की बात इस से पहले किसी को नहीं सूझी। परन्तु अब इंटरनेट जैसे प्रसार माध्यम के आने से भी पंजाब के शुद्ध रक्त यदुवंशी सैनियों में इस कपट और सांस्कृतिक प्रदूषण को लेकर चिंता जाग रही है ।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना उचित होगा कि पूरी माली जाति इस गोत्र चौर्य के लिए उत्तरदायी नहीं है। यह उन धूर्त राजनैतिक प्रचालकों की करतूत है जो अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए किसी प्रकार की कुटिलता करने के लिए तैयार रहते है। जिन लोगों ने माली भाईचारे के नाम पर यह प्रशासनिक मिथ्या निरूपण किआ उन्होंने इस कुकृत्य के लिए सर्वेक्षण करके या मतदान करवा कर माली भाईचारे से आज्ञा नहीं ली थी। माली भाईचारा स्वयं इस कपट से भरी हुई राजनीति से शोषित है। इस लिए इस बात के लिए माली भाईचारे के किसी भी व्यक्ति का मान मर्दन करने का कोई औचित्य नहीं है। माली भाईचारे के स्वाभिमानी लोगों को जब इस कुकृत्य का ज्ञान होता है अधिकतर वह स्वयं ही अपने को सैनी बोलना छोड़ देते हैं। कोई भी स्वस्थ आत्मसम्मान वाला स्वावलंबी व्यक्ति नकली पहचान लेकर नहीं जीना चाहता है।

पूरे समाज को इस बात पर भी चिंतन करना चाहिए कि क्यों हम कुछ व्यवसायों को ऐसी दृष्टि से देखते हैं जिस के कारण आदर पाने के लिए पूरी तरह से निति और परिश्रम द्वारा जीवन यापन करने वाले भाइयों को सामाजिक सम्मान पाने के लिए अपनी जाति का नाम बदलना पड़ता है। वैसे तो स्वतंत्रता उपरान्त हमारा समाज अब काफी बदल चुका है परन्तु

© धर्मपालसुत
All rights reserved

अभी और बदलने की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक शरीर स्वस्थ तभी तक माना जा सकता है जब तक उसके प्रत्येक अंग में पूर्णता हो। उसी प्रकार एक समाज भी तभी तक स्वस्थ और पूर्ण है जब तक उस समाज में सभी व्यवसाय आदर पाते हैं। रिग वेद के मंडल १० में दी हुई पुरुषसूक्त का भी यही मर्म है। माली द्वारा बनायीं हुई माला मंदिर में देवों पर उनको शोभायमान बनाने के लिए चढ़ती है। यह काम करने वाली जातियां पूरे सम्मान की पात्र हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड की तथा कथित "सूर्यवंशी सैनी" अर्थात् "गोला" जाति ।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड की तथा कथित "सूर्यवंशी सैनी" जाति का भी पंजाब के यदुवंशी सैनी क्षत्रिय भाईचारे के साथ कोई सांस्कृतिक और वंशानुगत सम्बन्ध नहीं हैं । इस जाति का असली नाम "गोला" है। कई लोग इनको "भागीरथी माली" भी कहते हैं। इनकी पहचान के साथ "सैनी" कैसे जुड़ा यह एक अलग चर्चा का विषय है क्यों कि ये स्वयं ही अपने को यदुवंशिओं से भिन्न मानते हैं और न ही पंजाब के जादो बंसी सैनी या यदुवंशी क्षत्रिए इनको अपने में से एक मानते हैं। वास्तव में यह काछी, माली, बागबान , गोला , भागीरथी , कोइरी इत्यादि सात या आठ अलग जातियों का समूह है जो वोटों की राजनीति के चलने के कारण "सूर्यवंशी सैनी" नामक समीकरण में परवर्तित हो गया। इनमे "सैनी" नाम की भी एक खाप थी जिसका पंजाब के यदुवंशी सैनियों अर्थात शूरसैनियों के साथ कोई सांस्कृतिक और वंशानुगत सम्बन्ध नहीं था । सन्दर्भ के लिए "सैनी" नाम की खापें जाटों , खैबर के पठानों, मुग़लों और मुस्लमान राजपूतों या रंघड़ों, अखनूर के ब्राह्मणों, बनियों और कई और जातियों में भी थीं जिस से अपने आप में कुछ सिद्ध नहीं होता। इस विषय में आगे कुछ और भी कहेंगे।

अंग्रेजी काल में भी इनकी भर्ती फ़ौज में नहीं होती थी। केवल पंजाब के यदुवंशी क्षत्रिय सैनियों की ही सेना में भर्ती होती थी। दोनों विश्वयुद्धों, आज़ाद हिन्द फ़ौज में और स्वतन्त्र भारत के सभी युद्धों में लड़ने वाले और अपने शौर्य से इंडियन आर्डर ऑफ़ मेरिट (महावीर चक्र) , परम वीर चक्र, विक्टोरिया क्रॉस के समकक्ष क्रॉस ऑफ़ सैन्ट जॉर्ज, और आर्डर ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया (सरदार बहादुर) जैसे सम्मान जीतने वाले सभी सैनी वीर योद्धा पंजाब से हैं। एक भी पंजाब या उस के सीमावर्ती पशियमोत्तर हरयाणा या जम्मू से बाहर का नहीं है।

© धर्मपालसुत
All rights reserved

और ना ही उत्तराखंड और उत्तरप्रदेश के इस तथा कथित "सूर्यवंशी सैनी" नामक समीकरण अर्थात् गोला इत्यादि जातियों को अंग्रेजी काल में पंजाब के जादो बंसी सैनियों के जैसे अलग अलग क्षेत्रों की ज़ैलदारियाँ और सरदारियाँ प्राप्त थीं । जैलदार पुराने समय के राजपुताना के ठाकुरों के समतुल्य होते थे जो लगभग बीस या उससे अधिक गाँवों की ज़ैल की कर वसूली करते थे और उनका प्रशासन देखते थे। ये पदवी सम्बंधित क्षेत्र की सबसे प्रतिष्ठित और वर्चस्वी जाति के चौधरिओं को ही दी जा सकती थी जिनकी जाति को सम्बंधित क्षेत्र की अन्य जातिओं के लोग भी प्रतिष्ठित और अग्रणीय माना करते थे। स्थानीय जातीय पदानुक्रम में पीछे या नीचे रह जाने वाली किसी जाति को यह पद नहीं मिल सकता था क्योंकि उस काल में तथा कथित छोटी जाति वाला कोई व्यक्ति ऊँची जाति वाले लोगों से कर नहीं वसूल सकता था। गलत या सही , समाज का ढांचा ही ऐसा था। ।

पंजाब के जादो बंसी सैनियों की सामाजिक स्तिथि के ऊपर एक और परिपेक्ष के लिए यहाँ बताना अनुचित न होगा कि गुरदासपुर में तलवंडी के सैनी सरदार दल सिंह महाराजा रंजीत सिंह के प्रमुख सेना पतिओं में से थे और इन्होने अठारह सौ पैंतालीस में हुई एंग्लो सिख युद्ध में वीरगति प्राप्त की और इनकी जागीर इसी उपरान्त ही इनके वंशजों से छिनी। गुरदासपुर के सलारिया चौधरिओं के वैवाहिक सम्बन्ध स्वयं सरकार-ए-खालसा महाराजा रंजीत सिंह के साथ थे। फुलकियां रियासत के जरनैल नानू सिंह सैनी के परिवार के पाब्ला सरदारों के पास 26000 बीघा (यानी 655 मुरब्बे) से भी कहीं अधिक ज़मीन थी और फुलकियां के राज दरबार में इन जादो बंसी सैनी सरदारों को विशेष सम्मान और शाही उपाधियाँ प्राप्त थीं। इसी परिवार के सरदार जय सिंह सैनी महाराजा रंजीत सिंह के लाहौर दरबार में भी विशिष्ट अतिथि होते थे। पटिआला के पास जय नगर इन्ही की जागीर का अंश मात्र था ।

पंजाब के सैनी यदुवंशिओं के उत्तराखंड और उत्तरप्रदेश के इस तथा कथित "सूर्यवंशी सैनी" नामक समीकरण अर्थात् गोला इत्यादि जातियों में विवाह नहीं होते - और जैसे की स्वयं विदित है - ना ही इनके स्थानीय सामाजिक पदानुक्रम में स्थान, संस्कृति, और सभ्याचार एक जैसे हैं । इनकी खापें या गोत भी पंजाब के यदुवंशी क्षत्रिय सैनियों से पूर्ण रूप से भिन्न हैं। इनमे से एक खाप के नाम की समानता मात्र संयोग वश है। भारत भर में ऐसी कई जातियां हैं जिनके नाम में "सैनी" आता है पर वो आपस में एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं।

उदाहरण के रूप में बारह-सैनी नामक जाति पर दृष्टि डालिये। हालांकि बारह-सैनी भी अपने को यदुवंशी मानते हैं परन्तु ये बिलकुल अलग जाति है जो बनियों में गिनी जाति है। यह जाति

© धर्मपालसुत
All rights reserved

आजकल अपने को "वार्ष्णेय" कहलाती है पर अंग्रेजी काल तक इस जाति का शुद्ध ऐतिहासिक नाम बारह-सैनी ही था और इनकी संस्कृति बिलकुल कुलीन और उन्नत वणिक जातियों जैसी है (क्षत्रिय जातियों जैसी नहीं) ।

ठीक इसी प्रकार अग्गरवाल बनियों में भी बारह सैनी , चाऊ सैनी , और राजा सैनी नामक शाखाएं हैं जिनके वंशज अपने को द्वापर युग के सूर्यवंशी राजा अग्गरसेन जी से जोड़ते हैं। ये अग्रसेन जी यदुवंश की अंधक शाखा के राजा और श्री कृष्ण के नाना जी उग्रसेन से भिन्न बताये जाते हैं।

इसी प्रकार संगीत के घरानो की शाखाओं में भी सैनी घराना है जो कि संगीत सम्राट तानसेन से जुड़ा हुआ है न कि यदुवंशी शूरसैनियों से या अग्गरवाल बनिया सैनियों से।

राजस्थान के खत्री छीपा या छीम्बा हैं , बिहार के खत्री सुनार हैं और गुजरात के खत्री दर्ज़ी हैं। क्या इसका यह अभिप्राय है कि पंजाब के खत्री भी छीम्बा, सुनार या दर्ज़ी हैं? माली तो 1930 के दशक के प्रशासनिक मिथ्या निरूपण से पहले स्वयं ही अपने को सैनी नहीं बोलते थे।

ये बौद्धिक व्यभिचार नहीं तो और क्या है?

भारत का समाज शास्त्र ऐसी उदाहरणों से भरा पड़ा है। नाम की समानता विभिन्न कारणों से हो सकती है जिससे जाति की समानता स्वतः सिद्ध नहीं होती।

इस लिए पंजाब के जादो बंसी सैनी क्षत्रिय भाईचारे को उनकी घोर आपत्ति के उपरान्त भी उपरोक्त जातीय समूहों से जोड़ना अनीति , मिथ्याचार और दुर्भावना की परिकाष्ठा होगी जो कि अशोभनीय और असहनीय है!

न्यायिक अस्वीकरण

हम सभी जातियों का आदर करते हैं और सामाजिक ऊंच नीच को प्रोत्साहन या समर्थन नहीं देते। हम किसी हिन्दू जाति के प्रति द्वेष, ईर्ष्या और श्रेष्ठता के भावना नहीं रखते । किन्तु किसी भी पक्ष द्वारा अपने कुल और जठेरों की वंशानुगत सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा के कार्य के सन्दर्भ में जातिवाद का दोषारोपण करना सर्वथा आधारहीन और अनुचित होगा ।

इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय कवि मैथिलि शरण गुप्त की यह प्रसिद्ध काल जयी पंक्तिओं को उद्धृत करना असंगत न होगा :

© धर्मपालसुत
All rights reserved

जिसको न अपने बंधुओं के दुख सुख का ज्ञान है।

जिसको न अपने पूर्वजों की कीर्ति का कुछ ज्ञान है।

जिसकी न अपनी हीनता पर शोक , खेद महान है ।

जिसको नहीं खलता कभी संसार में अपमान है।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है।

वह नर नहीं , पशु निरा है, और मृतक समान है ।

मैथिलि शरण गुप्त जिस "पूर्वजों की कीर्ति के ज्ञान " की यहाँ बात कर रहें हैं , हमारा उत्साह भी उसी "पूर्वजों की कीर्ति के ज्ञान" के छदम वृतांतों में विलय और लुप्त हो जाने की प्रक्रिया का निरोध करने तक ही सीमित है (किसी जाति विशेष का अपमान करने के लिए नहीं) । यह चेतना शास्त्रों में बताये हुए पितृ ऋण के सिद्धांत से भी सम्बंधित है जिस से जादो बंसी सैनी क्षत्रियों की चिर काल से चलती आ रही जठेरा पूजन की वैदिक परम्परा मौलिक रूप से जुडी हुई है ।"पूर्वजों की कीर्ति का ज्ञान " किसी भी दृष्टि से जातिवाद नहीं है और न ही हम इसके लिए किसी भी सांस्कृतिक मार्क्सवादी चिंतक से क्षमा याचना के अभिलाषी हैं ।

हिन्दू जातियों के वैधानिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक समत्व, जिस का हम हर दृष्टि से अनुमोदन और समर्थन करते हैं, उन जातियों की विशिष्टता गौण या नगण्य नहीं करता । भारत का इतिहास इन्ही विशिष्ट जातियों के अनुभवों, उमंगों , वेदनाओं , वंशावलियों , और लोक कथाओं का एक समग्र वृत्तांत है। यह इतिहास को लिखने और पढ़ने की "अधः ऊर्ध्व" (या "बॉटम अप") पद्धति का एक अनिवार्य अंग है । इस लिए इनकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। अभिलेखों और मुद्राशास्त्र का अध्यन मात्र इतिहास लेखन का एक उपकरण है और उसकी अपनी सीमांए और कमियां होती है।

इस लेख में दूसरे जाति समुदायों का विवरण केवल पंजाब के सैनी जादोबंसी क्षत्रिय या शूरसैनी भाईचारे की अनमोल और विशिष्ट पहचान और उनके ऐतिहासिक वृत्तांत को असामाजिक तत्वों -और वोटों के लालची धूर्त नेताओं के दुष्प्रचार से सुरक्षित रखने के लिए दिया गया है।

हर जातीय समूह अपना सामाजिक उत्थान चाहता है। इसमे किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए और हम इसका अंतर्मन से समर्थन और सहयोग करते हैं। परन्तु किसी भी जाति को यह

© धर्मपालसुत
All rights reserved

अधिकार नहीं है कि वो अपने उत्थान के लिए किसी दूसरी जाति की पहचान और इतिहास से छेड़ छाड़ करे।

हम अब विवश हो कर प्रति क्रिया केवल इस लिए दे रहे हैं कि कई दशकों से शुद्ध जादो बंसी सैनियों की तथ्य पर आधारित प्रति क्रिया के अभाव के कारण ये दुष्प्रचार दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। शुद्ध यदुवंशी क्षत्रिय रक्त वाले पंजाब के सैनियों को इस सांस्कृतिक प्रदूषण के दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। अगर किसी दूसरे सामाजिक समूह के कुछ लोग आकर आपके शताब्दियों से चलते आ रहे बाप दादाओं के नाम , पहचान और जीवन वृत्तांत जड़ से ही बदलने का कुप्रयास करें तो उनके उत्तराधिकारियों की धर्म संगत, न्यायोचित , और रौद्र प्रति क्रिया के लिए वह स्वयं उत्तरदायी हैं।

1964 में पंजाब के महान शिक्षकों में गिने जाने वाले और खालसा कॉलेज (अमृतसर) में अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर डॉक्टर करतार सिंह (पी एच डी, पंजाब यूनिवर्सिटी) ने भी अपने बहुचर्चित निबंध में , पंजाब के शुद्ध रक्त यदुवंशी सैनी क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते हुए, इस आक्रोश को प्रकट किया था। उस से पहले अंग्रेजी काल में भी पंजाब के सैनी भाईचारे के वयोवृद्ध लोग इस के विरुद्ध आपत्ति प्रकट करते रहे। इस छदम सामाजिक अभियांत्रिकी या सोशल इंजीनियरिंग से केवल वोट बैंक और पद के लोभी राजनैतिक छुटभैय्ये और टट्ट पूंजिये ही लाभान्वित होते हैं। भाईचारे के शेष सदस्यों में इससे केवल मनोबल और उत्साह की हानि होती है जिस से कालांतर में शुद्ध कृष्णवंशी शूरसैनी यादव राजाओं के रक्त वाले पंजाब के सैनी भाईचारे का पूर्ण विनाश निश्चित है । सैनी भाईचारे के विचारशील युवक और वृद्ध दोनों सैनी कुल दीपक, स्वर्गीय सरदार करतार सिंह (पी एच डी), द्वारा व्यक्त की गई आपत्ति और इस चेतावनी को अतयंत गंभीरता से लें।

पंजाब में सिख पंथ और आर्य समाज के प्रभाव के कारण भी सैनी भाईचारे के जनसाधारण लोग अपनी जातीय पहचान के लिए इतने सजग नहीं हैं। ये प्रभाव अपने आप में पूर्णतः स्वस्थ हैं। लेकिन इसके फल सवरूप जातीय इतिहास के प्रति उनकी तुलनात्मक अरुचि का शोषण पंजाब के बाहर के छदम सैनी संगठनो ने और अनैतिक राजनीतिकारों ने भरपूर किया है।

एक हज़ार साल तक मुसलमान हकूमत से युद्ध करके और हर तरह का अत्याचार सह कर सैनी पहचान क्या इस दिन के लिए बचाई गयी थी कि दो कौड़ी के स्वार्थी वोट बैंक के भूखे टट्ट पुँजिये नेता उसे खैरात की तरह अन्य समूहों में बाँट दें, जो रक्त, सामाजिक स्तर और संस्कृति तीनो से सैनियों से बिलकुल अलग हैं? और जो अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए

© धर्मपालसुत
All rights reserved

सैनियों की चिर काल से चलती आ रहे इतिहास और पहचान को अपनी सुविधा के अनुसार तोड़ते और मरोड़ते हैं ?

अगर ये लोग जातिवाद के विरुद्ध सच में लड़ रहे होते तो पंजाब में बहुत और स्थानीय जातियां हैं जो तथा कथित ऊंची जातियों के व्यवहार से तंग आकर ईसाई मत कि तरफ भाग रही हैं। । पहले इन जातियों को गले लगाएं जो मलेछ धर्म परिवर्तन गिरोहों द्वारा भ्रमित और शोषित हो रही हैं। उत्तरप्रदेश और राजस्थान की अपनी सुविधा अनुसार चुनी हुई जातियों की समाज सेवा का स्वांग अपनी खोटी राजनीति को सिद्ध करने के लिए उसके बाद में रचें ।

"वसुधा एव कुटुम्भकम" और "मानस की जात सभै एको पहचानबो" की वैदिक और सिख परिदृष्टि से भी अगर सोचा जाये तो भी पंजाब की स्थानीय सर्व समाज की जातियां जैसे छिम्बा, सुनियारा, खत्री, अरोड़ा, ब्राह्मण, तरखान, जट्ट, जुलाहा, झीर, मज़हबी सिख इत्यादि सैनियों के यू पी और राजस्थान की सुविधा अनुसार चुनी हुई जातियों से अधिक निकट हैं क्यों कि हम कम से कम एक हज़ार वर्ष से इनके साथ रह रहे हैं और इनके दुख और सुख बांटते आ रहे है। । पहले अपने पड़ोस वाली पंजाबी जातियों को अपना भाई बनायें और फिर दूसरे प्रदेशों के लोगों के कल्याण की चिंता करें जो कि अपने हित साधने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम हैं। दान और समाजसेवा का कार्य सदा घर से प्रारम्भ होता है। छदम समाज सेवा का आडम्बर न करें।

और ना ही वैदिक और पौराणिक साहित्य में , भाई गुरदास जी की वारों में, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में, और अन्य सिख साहित्यिक कृतियों में अति सम्मानित और पूजित अवतारों और महापुरुषों का घोर अपमान करने वाले, बर्तानवी औपनिविषेक सत्ता और ईसाई मिशनरीओं द्वारा पोषित, जोति राओ फुले, को चालाकी से सैनी बता कर, उसका हर स्थान पर फोटोशॉप किया हुआ जाली चित्र लगाकर, पूरे सैनी भाईचारे का आध्यात्मिक नाश करें। जोति राओ फुले सैनी नहीं माली जाति से था । अनेक विद्वानों के अनुसार यह एक क्रिप्टो-क्रिस्चियन (या गुप्त ईसाई) था जिसने अनपढ़ हिन्दुओं को अपने अराध्ये देवों और अवतारों को गाली दे कर इसाह मसीह को छदम रूप से "बलि राज" बनाकर पूजने की प्रेरणा दी (देखें "गुलामगिरी" , जोति राओ फुले, पृष्ठ 62, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली , 2016) । स्वयं माली भाईचारे को इसकी शिक्षाओं का अनुसरण नहीं करना चाहिए। ईसाई चर्चों द्वारा अश्वेत लोगों का शोषण करने वाली रंग भेदी ट्रांस अटलांटिक दास प्रथा का सञ्चालन करने का इतिहास किसी से ढका छुपा नहीं है ।स्वयं पश्चिम के लोग अब ईसाइयत को भारी संख्या में त्याग चुके हैं और योग, वेदांत, और

© धर्मपालसुत
All rights reserved

भारतीय आध्यात्म की ओर आकर्षित हो रहे हैं। जोति राओ फुले की भागवत विरोधी शिक्षाओं में बहुत अंतर्विरोध और अंतर्द्वंद थे जिसे इसने कभी सुलझाया नहीं । माली भाईचारे में इसका बढ़ चढ़ कर प्रचार ईसाई मिशनरीओं द्वारा भारत के स्वदेशी धार्मिक पंथों के विरुद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय षड़यंत्र का एक अंग प्रतीत होता है।

जिस देश और काल में फुले का जन्म हुआ उस समय महाराष्ट्र में सैनी भाईचारे का किसी को नाम तक नहीं पता था और स्वयं फुले ने अपने आप को सैनी भाईचारे से कभी नहीं जोड़ा। सैनियों को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करना अब त्याग दें। सं 2001 में भी होशीआरपुर के सैनियों ने शठ राजनैतिक संघठनो द्वारा जोति राओ फुले को सैनियों से जोड़ने पर कड़ी आपत्ति प्रकट की थी और न्यायिक कार्यवाही की चेतावनी भी दी गई थी (देखें "दी ट्रिब्यून" , नवंबर 3 , सं 2001)। । ऐसे गुरमत विरोधी, सनातन और सिख पंथ के विनाश करने वाले काम और दुष्प्रचार ये सत्ता के लोभी टटपूंजिये नेता छोड़ दें । ये उनको चेतावनी है। नहीं तो पंजाब की चिरप्राचीन आर्य संस्कृति और सिख पंथ में सम्मानित श्रद्धेय और महापुरुषों को अपमानित करने वाले विचारकों का प्रचार करने वालों का स्वेच्छा से या अनायास ही शुद्धिकरण पंजाब के वीर लोग भलीभांति जानते हैं।

शूरसैनी और सामाजिक समरसता

सामाजिक समरसता की शिक्षा जादो बंसी सैनियों या शूरसैनियों की संस्कृति में प्राचीन काल से निहित है। इसके लिए उन्हे विदेशिओं और विधर्मियों द्वारा पोषित छदम समाज सुधारकों का अनुयायी बन ने की आवश्यकता नहीं है।

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन: ।। "

(भागवद गीता , परिछेद 5, श्लोक 18)

अर्थात:

"ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा को देखनेवाले होते हैं।"

© धर्मपालसुत
All rights reserved

पूरे संसार को वेदांत की यह शिक्षा, जिसमे ब्राह्मण और चांडाल को सम दृष्टि से देखा जाता है , देने वाला यह व्यक्ति कोई और नहीं सैनियों का प्राचीन और सर्व पूजित पूर्वज या जठेरा शूरसेनो यदु श्रेष्ठः , यानी शूरसैनी यादवों में सर्व श्रेष्ठ , श्री कृष्ण ही थे।

सिख आदि ग्रन्थ में दूसरे गुरु-पातशाह, श्री अङ्गद देव जी, ने वेदांत और भागवद गीता की इस सीख को संत भाषा में ऐसे परभाषित किआ है:

एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा ॥

आतमा बासुदेवस्यि जे को जाणै भेउ ॥

नानक ता का दास है सोई निरंजन देउ ॥

(आदि ग्रन्थ साहिब जी, अंग 469)

अद्वैत वेदांत द्वारा प्रतिपादित पारमार्थिक परिदृष्टि से तो शूरसैनी यादवों में सर्व श्रेष्ठ , श्री कृष्ण, के दिव्य आलिंगन में पूरा ब्रह्माण्ड ही आता है और वह इस सृष्टि के सभी भूतों के अनादि पूर्वज हैं । किन्तु व्यवहारिक ओर लौकिक परिदृष्टि से उनके वंशज केवल जादो बंसी सैनी और उनसे निकली हुई अनेक शाखाओं के लोग ही है। सैनियों के लिए श्री कृष्ण की वंदना करने के लिए उन्हें परमात्मा समझना भी आवश्यक नहीं है। सैनियों के लिए श्री कृष्ण और उनके जीवन सिद्धांत केवल इसी लिए सर्व मान्य हैं क्योंकि वह सैनियों के सर्व पूज्य और सर्वमान्य जठेरा हैं। सैनियों के जठेरों के देवस्थल पंजाब में उनके गांव गांव में हैं और जहाँ अन्य जठेरों की पूजा अर्चना से पहले उनके सर्वोत्तम जठेरे शूरसैनी श्री कृष्ण की पूजा ही होती है।

प्राचीन काल में शूरसैनियों द्वारा शासित वृष्णि संघ भारत में ही नहीं पूरे विश्व में लोकतंत्र की सर्व प्रथम परिकल्पना थी।

पंजाब, हिमाचल, जम्मू , और पश्चिमोत्तर हरयाणा में 500 से भी ऊपर ऐसे गांव हैं जिनमे सैनियों का पूर्ण वर्चस्व है और वह इन गाँवों के सबसे बड़े ज़मींदार, और यहाँ के लम्बड़दार या चौधरी हैं । इन गाँवो में अन्य जातियों के लोग भी पाए जाते हैं। इन गांवों में अगर सैनी चाहें तो किसी और जाति के व्यक्ति को अपने से पूछे बिना सांस भी न लेने दें। लेकिन आप इन गाँवों में से कभी भी दलितों या किसी और सामाजिक रूप से निर्बल भाईचारे के साथ हुए उत्पीड़न का समाचार नहीं सुनेंगे। ऐसा इस लिए कि अत्याचार करना और सहना या सामाजिक

© धर्मपालसुत
All rights reserved

उंच नीच करना, दुर्योधन के राजभोज को ठोकर मार कर दास विदुर का साग खाने वाले, श्री कृष्ण के वंशजों के जातीय संस्कारों में हो ही नहीं सकता। सैनियों ने भारी मात्रा में सिखी को अपनाया ही इस लिए क्योंकि सिखी के सिद्धांत यादवों के पुरातन आध्यात्मिक मूल्यों के अनुकूल हैं।

पूरे संसार को ब्रह्म की एकता और अच्छेद्यता की और लोकतंत्र की शिक्षा देने वाले के वंशजों को सामाजिक सम रसता क्या किसी विधर्मी से सीखने की आवश्यकता है? ऐसा सोचना भी परिहास का विषय होगा ।

अंतिम शब्द

पंजाब का जादोबंसी सैनी भाईचारा नैतिकता विहीन राजनीति से प्रेरित छदम सैनी संगठनों के दुष्प्रचार को अब और स्वीकार नहीं करेगा। अगर अपने पूर्वजों की ख्याति का ज्ञान उपार्जन और रक्षा जातिवाद होता तो दसवीं पातशाही गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज रामावतार और कृष्णावतार जैसी कृतियां लिखवाकर उन्हे दशम दरबार में क्यों संकलित करवाते और अपने खालसे को उसे क्यों पढ़ाते ? सैनियों के पास कृष्णावतार की रक्त धारा और संस्कृति दोनों नैसर्गिक रूप से हैं । वह उसका परित्याग क्यों करें?

अपने वीर, सदाचारी, बलिदानी, और त्यागी जठेरों की ख्याति और उनके धार्मिक मूल्य ही क्षत्रिय कुलों की सब से बहुमूल्य सम्पति होती हैं । इनके बिना क्षत्रिय रक्त निस्तेज और निर्वीर्य हो जाता है । जिससे सर्व समाज में आदर्शहीनता , पाप, और अनाचार बढ़ता है (केवल उस क्षत्रिय जाति में ही नहीं)। बलभद्र की सौगंध हम इन्हे मिटने या इनमे किसी को प्रक्षेप नहीं करने देंगे।

धन्यवाद!

सौजन्य से:

जादो बंसी सैनी क्षत्रिय राजपूत महा सभा (पंजाब, हिमाचल, जम्मू , और हरयाणा)

© धर्मपालसुत
All rights reserved

Legal Disclaimer: *We do not in any shape or form endorse the practice of Sati as defined in the various legal statutes of government of India. Accounts of Sati Mother Goddess worship given in this article are for the sole purpose of faithfully documenting the socio-anthropological and ethnographic data in respect of Shoorsaini or Saini community of Punjab, strictly within an academic framework. Sati Goddess worship, with its concomitant heroic and supernatural motifs, was widely popular among all Rajput descent tribes of Punjab and Rajputana. Accordingly, each Saini village has mandatorily a shrine for Sati Mata Goddess, which is supposed to ward off ill-luck and is a place marked for observing rituals for all auspicious lifecycle events like childbirth, tonsure, thread wearing ceremonies, etc. It is also worth noting that Sati worship practice as currently extant in the community too in no way mimics, abets, or glorifies the practice of Sati as defined under* ***THE COMMISSION OF SATI (PREVENTION) ACT, 1987.***

© धर्मपालसुत
All rights reserved